अ : साहित्य समाज का दर्पण है ।

इस सिद्धान्त का जन्म युरोप में हुआ । प्लेटो तथा अरस्तु के अनुकरण सिद्धांन्त के साथ । जब कि इस सिद्धान्त का जन्म भारत वर्ष में भरत के 'लोकानुकृति नटियम' के साथ हुआ । इसका विशेष अर्विभाव १८ वीं तथा १९ वीं शती में साहित्य में यथार्थवाद के प्रचार- प्रसार के साथ हुआ । बाद में इस सिद्धांत में साहित्य का समाजशास्त्र की संकल्पना ने विशेष भूमिका आदा की । इस सिद्धान्तानुसार प्रत्येक साहित्य का रचियता समाज में रहकर जो अनुभव लेता है, उसी को शब्दबद्ध कर समाज के सम्मुख रखता है । उसकी रचना के चारो ओर के वातावरण का प्रत्यांकन जाने- अनजाने में हो जाता है । '' [२०] इसमें संदेह नहीं की प्रस्तुत सिद्धान्त में साहित्य

या कला के वस्तु - तत्व पर अधिक बल है और वस्तु- तत्व में समसामायिक भौतिक परिवेश- अर्थात साहित्यकार के देश- काल की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों का ही प्राधन्य रहता है । इस प्रकार यह सिद्धान्त साहित्य और समाज के प्रत्यक्ष तथा सरल सम्बन्ध का निर्वचन करता है ।

मोटे रूप से इस सिद्धान्त की मान्यता है कि साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है, नगेन्द्र आगे लिखते है , **''दर्पण शब्द बिंब- प्रतिबिम्ब भाव का वाचक है अतः प्रस्तुत सूत्र का अर्थ यह है कि साहित्य में समाज का उसी प्रकार प्रतिबिंब रहता है जिस प्रकार दर्पण में मूल पदार्थ का । स्पष्ट शब्दों में अपने परिवेश का यथार्थ चित्रण ही यहां साहित्य का सहज धर्म माना गया है । सहज धर्म से अभिप्राय यह है कि साहित्यकार सिद्धांततः या कर्तव्य- भावना से प्रेरित होकर अपने परिवेश का यथार्थ चित्रण नहीं कर ऐसा करना उसके लिए एक प्रकार की अनिवार्यता हो जाती है ।''** [२१] इस संदर्भ का बड़ा सटिक उदाहरण डॉ. कुंवरपाल सिंह ने अपनी किताब साहित्य और राजनीति में इस तरह दिया है । **''इमरजेंसी राज में जनवादी लेखकों ने ऐसे दस्तावेज लिखे है; छापे है और दूर- दूर तक पहुँचाए है । उनके जरिएँ उन्होंने अपनी जनता को केवल राजनीतिक सूचनाएँ ही नहीं साहित्य भी दिया है -चुने हुए उद्धारणों, काव्यांशों, कविताओं और छोटी- छोटी कहानियों के रूप में । किसी भी देश, किसी भी भाषा , किसी भी दल-मत- सम्प्रदाय के रचनाकार की रचनाओं से उन्होंने गुरेज नहीं किया बशर्ते रचनाजनवादी हो, जनता में चेतना और लोगों के दिलों में अपने लिए दयादारी और हौसला तथा दुश्मन के लिए नफरत और गुस्सा पैदा करें । ''** [२२]

इस बात से स्पष्ट होता है कि साहित्य समाज तथा राष्ट्र के अन्तर्गत एवं बाहरी गतिविधियों का भी सशक्त जायजा लेकर उसे प्रेरित - प्रोत्साहित करके आगे बढता है । याने स्पष्ट रूप में समाज की छबी हुबहु साहित्य में झलकती है ।

Scanned with CamScanner

भाषा

भाषा की दृष्टि से अपने समय के लेखकों में भट्ट जी का स्थान बहुत ऊँचा है। उन्होंने अपनी रचनाओं में यथाशक्ति शुद्ध हिंदी का प्रयोग किया। भावों के अनुकूल शब्दों का चुनाव करने में भट्ट जी बड़े कुशल थे। कहावतों और मुहावरों का प्रयोग भी उन्होंने सुंदर ढंग से किया है। भट्ट जी की भाषा में जहाँ तहाँ पूर्वीपन की झलक मिलती है। जैसे- समझा-बुझा के स्थान पर समझाय-बुझाय लिखा गया है। बालकृष्ण भट्ट की भाषा को दो कोटियों में रखा जा सकता है। प्रथम कोटि की भाषा तत्सम शब्दों से युक्त है। द्वितीय कोटि में आने वाली भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ-साथ तत्कालीन उर्दू, अरबी, फारसी तथा ऑग्ल भाषीय शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। वह हिन्दी की परिधि का विस्तार करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने भाषा को विषय एवं प्रसंग के अनुसार प्रचलित हिन्दीतर शब्दों से भी समन्वित किया है। आपकी भाषा जीवंत तथा चित्ताकर्षक है। इसमें यत्र-तत्र पूर्वी बोली के प्रयोगों के साथ-साथ मुहावरों का प्रयोग भी किया गया है , जिससे भाषा अत्यन्त रोचक और प्रवाहमयी बन गई है।

वर्ण्य विषय

भट्ट जी ने जहाँ आँख, कान, नाक, बातचीत जैसे साधारण विषयों पर लेख लिखे हैं, वहाँ आत्मनिर्भरता, चारु चरित्र जैसे गंभीर विषयों पर भी लेखनी चलाई है। साहित्यिक और सामाजिक विषय भी भट्ट जी से अछूते नहीं बचे। 'चंद्रोदय' उनके साहित्यिक निबंधों में से है। समाज की कुरीतियों को दूर करने के लिए उन्होंने सामाजिक निबंधों की रचना की। भट्ट जी के निबंधों में सुरुचि-संपन्नता, कल्पना, बहुवर्णन शीलता के साथ-साथ हास्य व्यंग्य के भी दर्शन होते हैं।

शैली

भट्ट जी की लेखन – शैली को भी दो कोटियों में रखा जा सकता है। प्रथम कोटि की शैली को परिचयात्मक शैली कहा जा सकता है। इस शैली में उन्होंने कहानियाँ और उपन्यास लिखे हैं। द्वितीय कोटि में आने वाली शैली गूढ़ और गंभीर है। इस शैली में भट्ट जी को अधिक नैपुण्य प्राप्त है। आपने "आत्म-निर्भरता" तथा "कल्पना" जैसे गम्भीर विषयों के अतिरिक्त , "आँख", "नाक", तथा "कान", आदि अति सामान्य विषयों पर भी सुन्दर निबंध लिखे हैं। आपके निबंधों में विचारों की गहनता, विषय की विस्तृत विवेचना, गम्भीर चिन्तन के साथ एक अनूठापन भी है। यत्र-तत्र व्यंग्य एवं विनोद उनकी शैली को मनोरंजक बना देता है। उन्होंने हास्य आधारित लेख भी लिखे हैं, जो अत्यन्त शिक्षादायक हैं। भट्ट जी का गद्य गद्य न होकर गद्यकाव्य सा प्रतीत होता है। वस्तुत: आधुनिक कविता में पद्यात्मक

Scanned with CamScanner

सामाजिक विषयों पर निबंध लिखे हैं। जन साधारण के लिए भट्ट जी ने इसी शैली को अपनाया। उनके उपन्यास की शैली भी यही है, किंतु इसे उनकी प्रतिनिधि शैली नहीं कहा जा सकता।
इस शैली की भाषा सरल और मुहावरेदार है। वाक्य कहीं छोटे और कहीं बड़े हैं।

२. विचारात्मक शैली- भट्ट जी द्वारा गंभीर विषयों पर लिखे गए निबंध इसी शैली के अंतर्गत आते हैं। तर्क और विश्वास, ज्ञान और भक्ति, संभाषण आदि निबंध विचारात्मक शैली के उदाहरण हैं।
इस शैली की भाषा में संस्कृत के शब्दों की अधिकता है।

३. भावात्मक शैली- इस शैली का प्रयोग भट्ट जी ने साहित्यिक निबंधों में किया है। इसे भट्ट जी की प्रतिनिधि शैली कहा जा सकता है।
इस शैली में शुद्ध हिंदी का प्रयोग हुआ है। भाषा प्रवाहमयी, संयत और भावानुकूल है। इस शैली में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग भी हुआ है। अलंकारों के प्रयोग से भाषा में विशेष सौंदर्य आ गया है। भावों और विचार के साथ कल्पना का भी सुंदर समन्वय हुआ। इसमें गद्य काव्य जैसा आनंद होता है। चंद्रोदय निबंध का एक अंश देखिए- यह गोल-गोल प्रकाश का पिंड देख भाँति-भाँति की कल्पनाएँ मन में उदय होती है कि क्या यह निशा अभिसारिका के मुख देखने की आरसी है या उसके कान का कुंडल अथवा फूल है यह रजनी रमणी के ललाट पर दुक्के का सफ़ेद तिलक है।

४. व्यंग्यात्मक शैली- इस शैली में हास्य और व्यंग्य की प्रधानता है। विषय के अनुसार कहीं व्यंग्य अत्यंत मार्मिक और तीखा हो गया है।
इस शैली की भाषा में उर्दू शब्दों की अधिकता है और वाक्य छोटे-छोटे हैं।

साहित्य सेवा और स्थान- भारतेंदु काल के निबंध-लेखकों में भट्ट जी का सर्वोच्च स्थान है। उन्होंने पत्र, नाटक, काव्य, निबंध, लेखक, उपन्यासकार अनुवादक विभिन्न रूपों में हिंदी की सेवा की और उसे धनी बनाया।

साहित्य की दृष्टि से भट्ट जी के निबंध अत्यंत उच्चकोटि के हैं। इस दिशा में उनकी तुलना अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध निबंधकार चार्ल्स लैंब से की जा सकती है। गद्य काव्य की रचना भी सर्वप्रथम भट्ट जी ने ही प्रारंभ की। इनसे पूर्वक हिंदी में गद्य काव्य का नितांत अभाव था।

Scanned with CamScanner

11.1 बालकृष्ण भट्ट कृत "साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है"

संवेदना पक्ष

बालकृष्ण भट्ट भारतेंदु युग के प्रतिनिधि निबंधकार हैं जिनके निबंध लेखन में इस युग की सर्वाधिक सृजनात्मक प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। प्रस्तुत निबंध भारतेंदु युग में खड़ी बोली हिन्दी की बाल्यकालीन अवस्था के बावजूद हिन्दी गद्य के सृजनात्मक प्रयोग का प्रारंभिक एवं प्रतिनिधि उदाहरण है। इस निबंध में तत्कालीन हिन्दी गद्य की वैचारिक सशक्तता एवं भाषिक विकास को देखा जा सकता है। इस निबंध में भारतेंदुयुगीन नवजागरण की चेतना सर्वत्र अंतर्व्याप्त है।

इस निबंध के संवेदनात्मक पक्ष को निम्नांकित बिंदुओं में रखा जा सकता है-

- इस निबंध की संवेदना पर भारतेंदुयुगीन नवजागरण की पूरी छाप मौजूद है। इसमें साहित्य को व्यक्ति के संदर्भ में न देखकर जनसमूह के हृदय के विकास के संदर्भ में देखा गया है- *"प्रत्येक देश का साहित्य उस देश के मनुष्यों के हृदय का आदर्श रूप है। जो जाति जिस समय जिस भाव से परिपूर्ण या परिप्लुत रहती है, वे सब उसके भाव उस समय के साहित्य की समालोचना में अच्छी तरह प्रगट हो सकते हैं। xxx इसलिये साहित्य यदि जन-समूह (Nation) के चित्त का चित्रपट कहा जाए तो संगत है।"*
- भट्ट जी साहित्य को इतिहास से अलग करते हैं। यह विभेदीकरण प्राय: वैसा ही है जैसा प्रेमचंद के यहाँ किया गया है। प्रेमचंद का प्रसिद्ध विचार है कि इतिहास में नाम, तिथियाँ, घटनाएँ सच होती हैं किंतु बाकी सब झूठ जबकि साहित्य में नाम, तिथियाँ, घटनाएँ झूठ होती हैं, बाकी सब सच। भट्ट जी कहते हैं- "किसी देश का इतिहास पढ़ने से केवल बाहरी हाल हम उस देश का जान सकते हैं पर साहित्य के अनुशीलन से कौम के सब समय-समय के आभ्यन्तरिक भाव हमें परिस्फुट हो सकते हैं।"
- बालकृष्ण भट्ट ने साहित्य को जनसमूह के हृदय का विकास मानते हुए वैदिक साहित्य से लेकर भारतेंदुयुगीन गद्य साहित्य तक पर विचार किया है जो इस प्रकार है-
  - (क) भट्टजी ने वैदिक साहित्य के विश्लेषण से बात आरंभ की है। हम जानते हैं कि वैदिक साहित्य में प्राकृतिक शक्तियों को ईश्वर मानकर उनकी प्रार्थना में ऋचाएँ रची गई हैं। भट्टजी लिखते हैं *"प्रात: काल उदयोन्मुख सूर्य की प्रतिभा देख उनके सीधे-सादे चित्त ने बिना कुछ विशेष छानबीन किये इसे अज्ञात और अजेय शक्ति समझ लिया। xxx वायु जब प्रबल वेग से बहने लगी तो उसे भी एक ईश्वरीय शक्ति समझ उसको शांत करने को वायु की स्तुति करने लगे इत्यादि। वे ही सब ऋक् और साम की पावन ऋचाएँ हो गईं।"*
  - (ख) उपनिषद साहित्य को भट्टजी आर्यों के ईश्वर विषयक चिंतन का परिणाम मानते हैं।
  - (ग) स्मृति साहित्य को भट्टजी उस सामाजिक व्यवस्था की उपज मानते हैं जिसमें *'सबों को एकता के सूत्र में बद्ध रखने के लिये और अपने-अपने गुण कर्म से चल-विचल हो सामाजिक नियमों को किसी प्रकार की हानि न पहुँचाए'* जैसी स्थिति की आवश्यकता महसूस की गई। स्पष्टत: यह मौर्योत्तर सामाजिक स्थिति को संकेतित करता है जिसमें मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति लिखी गई।
  - (घ) इसके बाद भट्टजी रामायण एवं महाभारत जैसे महाकाव्यों की व्याख्या करते हैं। वे उदाहरण देते हैं कि रामायण उस युग की अभिव्यक्ति है जिसमें दो भाई (राम एवं भरत) एक दूसरे के लिये सारा राजपाट न्यौछावर करने के लिये व्याकुल दिखते हैं। वहीं, महाभारत में उस समाज की स्थिति अभिव्यक्त हुई है जिसमें दो भाइयों के कुलों का पारिवारिक स्वार्थ इस हद तक हो गया है कि बिना युद्ध के वे सुई के अग्रभाग के बराबर जमीन भी नहीं सौंपेंगे।

Scanned with CamScanner